मलेरिया पत्रिका

वर्ष 20 अंक 1 मार्च 2012

राष्ट्रीय मलेरिया अनुसंधान संस्थान
(भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद)

मलेरिया पत्रिका

वर्ष 20 अंक 1 मार्च 2012

सम्पादक
डॉ. नीना वलेचा

सहायक सम्पादक
डॉ. वन्दना शर्मा
डॉ. यूरगायला श्रीहरि

प्रकाशन एवं सज्जा
श्री जितेन्द्र कुमार
श्री दानसिंह सोंटियाल
श्रीमती मीनाक्षी भसीन
श्रीमती आरती शर्मा

विषय सूची

1. सम्पादकीय 3

2. मलेरिया अनुसंधान एवं प्रयोगशाला जन्तु 5
डॉ. पी.के. अतुल

3. भारत के गुजरात राज्य की देशी मछली *एफानियस डिस्पार* (रूप्पैल) का भौगोलिक वितरण एवं मच्छर लार्वाभक्षी क्षमता का मूल्यांकन 8
सरफराज़ुल हक एवं डॉ. राजपाल एस. यादव

4. मलेरिया संबंधी देश-विदेश के समाचार 13

पाठकों से

समस्त पाठकों से मलेरिया उन्मूलन संबंधी जानकारी, विशेष शोध-पत्र, कविताएँ, लेख, चुटकले, प्रचार वाक्य इत्यादि आमंत्रित किए जाते हैं।

सम्पादक

पत्रिका में प्रकाशित लेखों से सम्पादक की सहमति/असहमति होना अनिवार्य नहीं है, इसके लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार हैं।

जनहित में प्रकाशित नि:शुल्क हिन्दी त्रैमासिक

सम्पादकीय

मलेरिया पत्रिका का 'मार्च' अर्थात् वर्ष 2012 का प्रथम अंक आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है। हम आशा करते हैं कि यह नव वर्ष हम सभी के लिए स्वास्थ्य की दृष्टि से मंगलमय हो। मलेरिया विश्व में सर्वाधिक फैला हुआ संक्रमण है। विश्व मलेरिया रिपोर्ट 2011 के अनुसार, मलेरिया उष्णकटिबंधीय एवं अर्द्धउष्णकटिबंधीय विश्व के 106 देशों में व्यापक रूप से विद्यमान है। कुल मलेरिया के मामलों का 81 प्रतिशत उपसहारा अफ्रीका में पाया गया है, और वहाँ 81 प्रतिशत मामलों के लिए *प्लाज़्मोडियम फाल्सीपैरम* जिम्मेदार है। यद्यपि मुख्य रूप से बच्चे ही मलेरिया रोग से होने वाली मृत्यु का शिकार बनते हैं किन्तु यह भी सत्य है कि वयस्क भी कुछ सीमा तक इस रोग की चपेट में आते हैं। वर्ष 2010 में मलेरिया रोग से होने वाली मृत्यु का 20 प्रतिशत 15 से 49 वर्ष की आयु वर्ग के लोगों में पाया गया।

गौरतलब है कि मलेरिया नियंत्रण के लिए निरन्तर प्रयास की कमी ही एक ऐसी राष्ट्रव्यापी समस्या है जो मलेरिया उन्मूलन के मार्ग में बाधक है। कीटनाशक संसिक्त मच्छरदानियों एवं मच्छरों के प्रजनन स्थलों को नष्ट करने हेतु धुआंकरण जैसे उपायों को प्रयुक्त करने के बावजूद इन उपलब्धियों पर अनुवर्ती कार्रवाई करना एक चुनौती है। ग्रामीण क्षेत्रों में उपयुक्त परिवहन व्यवस्था न होने के कारण आँकड़ों में भ्रांतियां पैदा हो जाती हैं। भारत में भी विशेष रूप से झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और उत्तरी-पूर्वी राज्यों के आदिवासी इलाकों में मलेरिया समस्या विद्यमान है। एक स्त्रोतानुसार अनुमान है कि भारत में 25 मिलियन मलेरिया रोग के मामले सामने आते हैं एवं प्रतिवर्ष करीब 2 लाख लोग मृत्यु का शिकार होते हैं। शीघ्र एवं सही निदान, तत्काल व प्रभावशाली उपचार तथा रोग के प्रति जागरूकता मलेरिया नियंत्रण का एक कारगर उपाय है। हमारे संस्थान द्वारा प्रकाशित मलेरिया पत्रिका इसी उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में निरन्तर अग्रसर है।

पत्रिका के इस अंक में हमने दो लेख प्रस्तुत किए हैं। प्रथम लेख का शीर्षक है—"मलेरिया अनुसंधान एवं प्रयोगशाला जन्तु"। मलेरिया परजीवी *प्लाज़्मोडियम* के संक्रमण से मनुष्य सर्वाधिक प्रभावित होता है। *प्लाज़्मोडियम* की दूसरी विशिष्ट प्रजातियों का संक्रमण मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य जन्तुओं जैसे बन्दरों, भैसों, पक्षियों में भी होता है। मलेरिया परजीवी, पोषक जन्तु व वाहक मच्छरों में एक निश्चित संबंध होता है। इस लेख के द्वारा इसी रोचक विषय पर जानकारी दी गई है। द्वितीय लेख का शीर्षक है—"भारत के गुजरात राज्य की देशी मछली *एफानियस डिस्पार* (रूप्पैल) का भौगोलिक वितरण एवं मच्छर लार्वाभक्षी क्षमता का मूल्यांकन"। बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही अनेक देशों में मच्छरों के जैविक नियंत्रण हेतु मछलियों की विभिन्न प्रजातियों का व्यापक रूप से प्रयोग किया जा रहा है और रोगवाहकों के जैविक नियंत्रण पर अनुसंधान क्षेत्र में मत्स्य जन्तु जगत के सर्वेक्षण एवं देशी मछलियों की लार्वाभक्षी क्षमता के मूल्यांकन पर इस लेख के जरिए प्रकाश डाला गया है।

आशा है पत्रिका के इस अंक के लेखों में दी गई विज्ञानीय जानकारियां जनसामान्य के लिए मलेरिया ज्ञान का स्रोत साबित होंगी। हमें हमेशा आपकी प्रतिक्रियाओं एवं सुझावों को जानने की जिज्ञासा रहती है। आशा है आप अपने विचारों, सुझावों एवं मलेरिया संबंधी देश-विदेश के समाचारों से हमें अवश्य अवगत कराएंगे। आपके सुझाव एवं प्रतिक्रियाएं हमारे लिए प्रेरणा का कार्य करेंगी और आपके व हमारे बीच विचार-संप्रेषण का माध्यम बनेंगी।

नीना वलेचा

मलेरिया अनुसंधान एवं प्रयोगशाला जन्तु

डॉ. पी.के. अतुल*

मलेरिया परजीवी *प्लाज़्मोडियम* के संक्रमण से मनुष्य सर्वाधिक प्रभावित होता है। मनुष्य में संक्रमण *प्लाज़्मोडियम* की *वाइवैक्स, फाल्सीपैरम, ओवेल* व *मलेरी* प्रजातियों के द्वारा होता है। हाल ही में *प्लाज़्मोडियम* की *नॉवेलशाई* प्रजाति का संक्रमण भी मनुष्यों में पाया गया है। अभी तक यह प्रजाति बन्दरों में संक्रमण के लिए जानी जाती रही है। *प्लाज़्मोडियम* की दूसरी प्रजातियों का संक्रमण मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य जन्तुओं जैसे बन्दरों में *प्लाज़्मोडियम साइनोमोलगी*, पक्षियों में *प्लाज़्मोडियम गैलीनेशियम, प्लाज़्मोडियम रेलिक्टम* आदि द्वारा होता है। यहाँ तक कि भैंस में *प्लाज़्मोडियम बूबैलिस* व सरीसृपों में भी मलेरिया परजीवी के संक्रमण प्रकाश में आए हैं। इनके अतिरिक्त मलेरिया परजीवी की कुछ विशिष्ट प्रजातियों जैसे *प्लाज़्मोडियम बरघाई, प्लाज़्मोडियम योलाई, प्लाज़्मोडियम विन्काई* का प्रयोगशाला जन्तुओं जैसे मूषकों एवं चूहों में अनुसंधान कार्यों हेतु प्रयोगात्मक संक्रमण सर्वविदित है। मनुष्यों में मलेरिया परजीवी का प्रसार एनोफिलाइन वर्ग की मादा मच्छरों के द्वारा होता है जबकि अन्य जन्तुओं जैसे पक्षियों, चौपायों आदि में क्युलिसाइन वर्ग के मादा मच्छरों द्वारा होता है।

मलेरिया परजीवी, पोषक जन्तु व वाहक मच्छरों के बीच एक निश्चित संबंध होता है। मलेरिया रोग की रोकथाम हेतु प्रारम्भ से ही यह संबंध वैज्ञानिकों व शोधकर्त्ताओं के अध्ययन एवं रूचि का केन्द्र रहा है। सन् 1880 में चार्ल्स लुईस अल्फोंसे लैवरान ने सर्वप्रथम लाल रक्त कणों में मलेरिया परजीवी को देखा व तदनुसार वर्णन किया। सन् 1886 में कैमिलयागाल्गी ने मलेरिया परजीवी की दो प्रजातियों की भिन्नता को देखा। गियोवानीबतिस्ता ग्रासी व रेमण्डो फिलेटी ने सन् 1890 में पहली दो प्रजातियों *प्लाज़्मोडियम वायवैक्स* व *प्लाज़्मोडियम मलेरी* का नामकरण किया। सन् 1897 में विलियम वेल्श ने तीसरी प्रजाति *प्लाज़्मोडियम फाल्सीपैरम* का नामकरण किया। 1897 से 1898 के मध्य सर रोनाल्ड रॉस ने मच्छरों की आँत में मलेरिया परजीवी के ओसिस्ट प्रावस्था के विकास का पता लगाया और इस प्रकार उन्होंने रोग के कारक परजीवी, वाहक मच्छर व पोषक जन्तु के बीच सम्बन्ध को स्थापित किया। सन् 1922 में डब्ल्यु स्टीफैंस ने *प्लाज़्मोडियम ओवेल* प्रजाति का वर्णन किया। इसके पश्चात् मलेरिया परजीवी की रचना, प्रकृति, जीवन-चक्र, वाहक मच्छर की जानकारी एवं विस्तृत अध्ययन हेतु प्रयोगशालाओं में प्रयोगों का दौर प्रारम्भ हुआ।

मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य जंतुओं में सन् 1884 में रूसी वैज्ञानिक बासिल दानिलेवस्की एवं सन् 1890 में ग्रासी व उनके साथियों ने पक्षियों के रक्त में मलेरिया परजीवी की उपस्थिति को देखा। सन् 1901 में काक व रूज़ ने पालतू कनारी नामक पक्षियों पर *प्लाज़्मोडियम* परजीवी की *गैलीनेशियम* प्रजाति का उपयोग करते हुए प्रयोगशाला में औषधि परीक्षण से संबंधित प्रयोग किए।

*डॉ. पी.के. अतुल, राष्ट्रीय मलेरिया अनुसंधान संस्थान, सैक्टर 8, द्वारका, नई दिल्ली-110 077 में वैज्ञानिक 'डी' के पद पर कार्यरत हैं।

कालान्तर में यह परजीवी प्रजाति पक्षियों की अन्य जातियों जैसे मुर्गी, कबूतर, गौरैया आदि में वैज्ञानिक प्रयोगों का साधन बनी और मलेरिया अनुसंधान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुआ। सन् 1931 में राबर्ट नावेल और बृजमोहन दास गुप्ता ने लम्बी पूंछ वाले बंदरों में *प्लाज़्मोडियम नावेलशाई* नामक परजीवी की उपस्थिति का पता लगाया। सन् 1950 में डॉ. एस.पी. रामकृष्णनन व डॉ. सत्यप्रकाश ने *प्लाज़्मोडियम बरघाई* की जीव रचना एवं व्यवहार की व्याख्या प्रयोगशाला में उपयोग होने वाले छोटे मूषकों में संक्रमित करके की। सन् 1965 में डॉ. डब्ल्यू. पीटर ने सफेद मूषकों में 'फोर-डे-टेस्ट' परीक्षण विधि देकर मलेरिया के उपचारार्थ औषधि अनुसंधान एवं विकास हेतु महत्वपूर्ण योगदान दिया।

तत्पश्चात् मलेरिया अनुसंधान में विभिन्न जन्तुओं का प्रयोग औषधि परीक्षण, प्रतिरक्षा प्रयोगों, *प्लाज़्मोडियम* की रचना, प्रकृति एवं व्यवहार पोषक व परजीवी में सम्बन्ध आदि के अध्ययन हेतु बहुतायत से किया जाने लगा। मलेरिया के वाहक मच्छरों का प्रयोगशाला में कृत्रिम संवर्धन व अध्ययन हेतु प्रयोगशाला जन्तुओं का प्रयोग सर्वत्र किया जाता है। इस कार्य हेतु खरगोशों, मुर्गियों, कबूतरों, मूषकों एवं चूहों को प्रयोग में लाया जाता है। इन जन्तुओं के रक्त का पान कराके प्रयोगशाला में मच्छरों की कॉलोनी विकसित की जाती है जिसका उपयोग वैज्ञानिक एवं शोध-छात्र समय-समय पर आवश्यकतानुसार करते रहते हैं। इस प्रकार मलेरिया अनुसंधान में प्रयोगशाला जन्तुओं की उपस्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

प्रयोगशाला जन्तु सामान्य जन्तुओं से भिन्न होते हैं। मोटे तौर पर यह बन्द कमरों के कृत्रिम वातावरण में पोषित एवं विकसित किए गए जन्तु होते हैं। मनुष्य ने प्राचीन काल से ही शरीर रचना, कार्यकी, रोगों व उनके निदान को समझने के लिए विभिन्न जन्तुओं का उपयोग किया। जन्तुओं के उपयोग का इतिहास लगभग उतना ही प्राचीन है जितना कि मनुष्यों एवं पशुओं के विभिन्न रोगों की वैज्ञानिक जानकारी का। प्रारम्भ में प्रयोग किए जाने वाले जन्तुओं के बारे में कोई निश्चित जानकारी एवं मापदण्ड नहीं होते थे। वे सामान्य एवं अध्ययन हेतु उपयोग की दृष्टि से आवश्यकतानुसार ही हुआ करते थे। चिकित्सा विज्ञान के विकास के क्रम में अनुसंधान कार्यों हेतु प्रयोग हो सकने वाले जन्तुओं के निर्धारण हेतु निश्चित मापदण्डों की आवश्यकता हुई। परिणामस्वरूप प्रयोगशाला जन्तु विज्ञान एवं प्रयोगशाला जन्तुओं का एक विशिष्ट वर्ग अस्तित्व में आया।

अनुसंधान हेतु प्रयोग होने वाले ये जन्तु सामान्य जन्तुओं से शारीरिकी, जैव रासायनिक संरचना एवं आनुवंशिकी के स्तर पर भिन्न होते हैं। सामान्य जन्तुओं की तुलना में इनकी संरचना वैज्ञानिक उद्देश्यों हेतु नियंत्रित एवं ज्ञात होती है। ये जन्तु सामान्य प्राकृतिक आवास, वातावरण एवं भोजन से हटकर वैज्ञानिक विधियों द्वारा विकसित एवं प्रमाणित मानकों के आधार पर तैयार किए गए संतुलित व संक्रमण रहित भोजन, पानी एवं नियंत्रित वातावरण युक्त कमरों में रखे गए सुविधाजनक पिंजरों में पाले एवं विकसित किए जाते हैं। इनका आचरण एवं व्यवहार प्राकृतिक रूप से पलने वाले जन्तुओं की अपेक्षा अधिक संयमित व प्रयोगों के अनुकूल होता है। यह अनावश्यक रूप से उत्तेजित नहीं होते हैं। इनमें प्रयोगार्थ दिए जाने वाले उद्दीपनों के प्रति स्पष्ट व्यावहारिक एवं रासायनिक प्रतिक्रिया होती है जिसको समझना एवं विश्लेषण करना सहज और संभव होता है। प्राय: इनका आनुवंशिक एवं जैव रासायनिक स्तर सही-सही ज्ञात होता है।

प्रयोगशाला जन्तु सामान्यत: छोटे जन्तु होते हैं। सभी संबंधित प्रयोगशालाओं में विभिन्न उपजातियों, प्रजातियों के छोटे मूषक (माउस), चूहे (रैट्स), खरगोश (रेबिट), गिनीपिग, हैमस्टर, जियार्ड, कुत्ते, बिल्ली व बन्दरों की कुछ प्रजातियां, मुर्गी, कबूतर एवं अन्य कुछ विशिष्ट पक्षी विभिन्न अनुसंधान कार्यों हेतु प्रयोग किए जाते हैं। इनके अतिरिक्त बड़े पालतू जन्तु जैसे गाय, भैंस, घोड़े भी विभिन्न अनुसंधान उद्देश्यों हेतु प्रयोग किए जाते हैं।

यह प्रयोगात्मक जन्तु तो हैं किन्तु छोटे प्रयोगशाला जन्तुओं की श्रेणी में नहीं आते हैं। प्रयोगशाला जन्तुओं में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के आधार पर इन जन्तुओं की निम्न तीन श्रेणियां होती हैं:—

(अ) **कन्वेन्शनल एनीमल्स:** यह जन्तु सामान्य रख-रखाव वाले बन्द कमरों के बिना बैरियर्स के वातावरण में पाले एवं उपयोग में लाए जाते हैं। इनमें प्रथमदृष्ट्या रोगों के कोई लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। इन्हें हम सामान्यत: देखने में स्वस्थ जन्तु कहते हैं।

(ब) **एस.पी.एफ. एनीमल्स:** स्पेसिफिक पैथोजन फ्री एनीमल्स इनका रख-रखाव बैरियर युक्त वातावरण में होता है। ये जन्तु कालोनी विशेष के अन्तर्गत चिन्हित जीवाणुओं व रोगाणुओं से मुक्त होते हैं।

(स) **जर्मफ्री एनीमल्स:** नोटोबायोटिक एनीमल्स इन जन्तुओं का विकास एवं रख-रखाव पूर्णत: बैरियर युक्त एवं नियंत्रित वातावरण में होता है। यह विशेष तकनीक युक्त आइसोलेटर्स उपकरण में विकसित कर रखे जाते हैं। यह आवश्यक एवं अनावश्यक सभी प्रकार के जीवाणुओं व रोगाणुओं से मुक्त रहते हैं।

सूक्ष्म जीवों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के अतिरिक्त प्रयोगशाला जन्तुओं की आनुवंशिकी के आधार पर निम्न श्रेणियां होती हैं:—

1. **इन्ब्रेड एनीमल्स:** यह लगातार 20 पीढ़ियों तक ब्रदर एण्ड सिस्टर मेटिंग के द्वारा विकसित किए जाते हैं। यह शारीरिक एवं रासायनिक रूप से आपस में एक समान होते हैं।

2. **रिकॉम्बीनेन्ट इन्ब्रेड एनीमल्स:** दो स्थापित प्रजातियों के संयोजन एवं तत्पश्चात् 20 पीढ़ियों तक ब्रदर एण्ड सिस्टर मेटिंग से तैयार किए जाते हैं।

3. **कॉन्जेनिक एनीमल्स:** इन जन्तुओं के विकास में दो अलग-अलग प्रजातियां प्रयोग की जाती है जिनमें से एक इन्ब्रेड होती है जबकि दूसरी जो कि आवश्यक जीन की वाहक होती है, का इन्ब्रेड होना आवश्यक नहीं है।

4- **म्यूटैन्ट (सेग्रीगेटिंग इन्ब्रेड):** जब जन्तुओं के आनुवंशिक स्तर में अचानक परिवर्तन आ जाता है तो इसे म्यूटैन्ट कहते हैं। जब यह उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) किसी इन्ब्रेड प्रजाति में होता है तो उसे सेग्रीगेटिंग इन्ब्रेड कहते हैं।

5. **ट्रांसजेनिक एनीमल्स:** यह वह जन्तु होते हैं जिनका आनुवंशिक स्तर एवं संरचना प्रयोगात्मक जीन ट्रांसफर के द्वारा बदल दिया जाता है। किसी विशेष जीन को हटा देने के फलस्वरूप आवश्यक एनीमल मॉडल विकसित किया जाता है। इन्हें नॉक आउट एनीमल भी कहते हैं।

6. ***आउट ब्रेड एनीमल्स:*** यह बिना किसी निश्चित क्रम के प्रजनित किए जाते हैं। इस श्रेणी के जन्तु बाहर से देखने में तो समान होते हैं किन्तु जैवरासायनिक स्तर पर आपस में भिन्न होते हैं।

प्रयोगशाला जन्तुओं को हर संस्थान के सुव्यवस्थित प्रयोगशाला जन्तु सुविधागृह (लैब एनिमल फैसिलिटी) में वैज्ञानिक विधियों एवं निश्चित माप दण्डों के अन्तर्गत रखा एवं उपयोग में लाया जाता है। प्रयोगशाला जन्तुओं का विकास, रख-रखाव एवं उनका उपयोग अत्यन्त सतर्कता, वैज्ञानिक अभिरूचि, एवं उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य है। औषधियों के विरुद्ध मलेरिया परजीवी की प्रतिरोध विकसित कर लेने की विशेष क्षमता के कारण नई मलेरियारोधी औषधियों के विकास की सतत आवश्यकता बनी हुई है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आवश्यक अनुसंधान परीक्षण के लिए निरन्तर प्रयोगशाला जन्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार मलेरिया अनुसंधान के क्षेत्र में प्रयोगशाला जन्तुओं एवं इनसे संबंधित विज्ञान का योगदान सदा अपरिहार्य है। अत: इस क्षेत्र में शोध करने हेतु निरंतर संभावनाएं है

भारत के गुजरात राज्य की देशी मछली *एफानियस डिस्पार* (रूप्पैल) का भौगोलिक वितरण एवं मच्छर लार्वाभक्षी क्षमता का मूल्यांकन

डॉ. सरफराजुल हक[1] एवं डॉ. राजपाल एस. यादव[2]

बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही अनेक देशों में मच्छरों के जैविक नियंत्रण कारकों के रूप में मछलियों की प्रजातियों का व्यापक रूप से प्रयोग किया जा रहा है। कुछ विदेशी मछलियों *जैसेपोईसीलिया रेटिक्युलेटा गम्बुशिया एफिनीस* और *ओरियोक्रोमिस मोसेम्बिकस* का प्रयोग भारत की विभिन्न स्थितियों में मच्छर नियंत्रण हेतु किया गया है। इन विदेशी मछलियों के प्रयोग ने स्थानीय जलीय जीव जन्तुओं पर उनके संदेहास्पद प्रतिकूल प्रभावों के कारण अनेक प्रकार की पर्यावरण संबंधी समस्याएं उत्पन्न कर दी हैं। इसके परिणामस्वरूप, रोगवाहकों के जैविक नियंत्रण के अनुसंधान क्षेत्र में मत्स्य जन्तु जगत के सर्वेक्षण एवं देशी मछलियों की लार्वाभक्षी क्षमता का मूल्यांकन प्राथमिकता का विषय रहा है। भारत की संभावित लार्वाभक्षी मछलियों को ऐतिहासिक समीक्षाओं में दर्शाया गया है। भारत में मछली प्रजातियों की बड़ी संख्या का विभिन्न राज्यों में सर्वेक्षण किया गया है और मच्छर रोगवाहक नियंत्रण में उनकी भूमिका को मूल्यांकित किया गया है। तथापि, संभावित लार्वाभक्षी मछली की संतुलित लार्वा प्रवृति एवं प्रजनन दर में कमी सहित अनेक जैविक विशेषताएं, देशी मछली के अब तक किए गए मूल्यांकन के अनुरूप नहीं पाई गईं, जिससे ये मछलियाँ परिचालन प्रयोग के अनुकूल भी नहीं बन पाई हैं।

वर्ष 2001 में अंतर्राष्ट्रीय विज्ञानीय मिशन के दौरान एक लेखक (डॉ. यादव) द्वारा पूर्वी अफ्रीका समेत पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र की संभावित मछली की समीक्षा करते हुए इस तथ्य की खोज की गई कि *एफानियस डिस्पार* (रूप्पैल) में लार्वाभक्षी मछली होने की अत्यधिक क्षमता है जिसके अंतर्गत मच्छर नियंत्रण में इस मछली की क्षमता को कुछेक लघु स्तर पर किए गए क्षेत्रीय परीक्षणों द्वारा दर्शाया गया। प्राचीन भारतीय साहित्य में, पश्चिमी भारत की किलीफिश प्रजाति का उल्लेख भी किया गया था।

इसलिए, वर्तमान अध्ययन में प्रजातियों के भौगोलिक वितरण का मानचित्र बनाने एवं रिपोर्ट करने हेतु इंटरनैट सर्च एवं साहित्य की और अधिक समीक्षा की गई। हमने पाया कि स्थानीय स्थितियों में भारतीय मच्छर प्रजातियों के नियंत्रण की दिशा में इनकी क्षमता को मूल्यांकित करने हेतु कोई कार्य नहीं किया गया है। गुजरात राज्य में मत्स्य जन्तु जगत का एक व्यापक सर्वेक्षण किया गया जिसका उद्देश्य प्रयोगशाला में तथा नाडियाड जिला, गुजरात में लघु-स्तर पर क्षेत्रीय परीक्षण एवं प्रयोगशाला में लार्वा प्रवृति का मूल्यांकन करने हेतु मछली एकत्र करना था। सर्वेक्षण से प्राप्त तथ्यों एवं प्राकृतिक आवासों से लिए गए पानी की भौतिक विशेषताओं के विश्लेषण के आधार पर *एफानियस डिस्पार* की जैविकी एवं सहृयता सीमा (टोलरेंस) को भविष्य संदर्भ हेतु समेकित किया गया।

मछली एकत्रीकरण

ऐसा पाया गया है कि मछलियों की झुंड में रहने की प्रकृति होती है और बड़ी संख्या में मछलियां छोटे एवं

[1]सरफराजुल हक, अनुसंधान वैज्ञानिक, राष्ट्रीय मलेरिया अनुसंधान संस्थान (आई.सी.एम.आर.) की क्षेत्रीय इकाई, सिविल अस्पताल, नाडियाड-387 001, गुजरात, भारत में एवं राजपाल एस. यादव[2], वैज्ञानिक, रोगवाहक पारिस्थितिकीय एवं प्रबंधन, उपेक्षित उष्णकटिबंधीय रोग नियंत्रण विभाग, विश्व स्वास्थ्य संगठन, जेनेवा, स्विटज़रलैंड में कार्यरत हैं।

छिछले जल निकायों में जीवित रहती हैं। ये मछलियाँ जलमग्न जलीय वनस्पति वाले जल निकायों में रहना पसंद करती हैं। वर्ष 2006 में रापर, जिला कच्छ तथा गोटार्का जिला पाटन के प्राय: उप-नदियों के साथ-साथ छिछले पानी के तालाबों से जीवित मछलियों के झुंडों को एकत्रित किया गया। इन मछलियों को प्राकृतिक निवास स्थलों से नाडियाड स्थित प्रयोगशाला में लाया गया एवं नल के पानी वाले मछली घर में पर्यावरण के अनुरूप इनका अनुकूलन किया गया। तत्पश्चात् वर्ष 2009 व 2010 में गुजरात के जामनगर तथा कैम्बे की खाड़ी के मुहाने के पानी में भी मछलियों का सर्वेक्षण किया गया।

जीव-पारिस्थितिकी एवं सहयता सीमा

एफानियस डिस्पार की जैविक विशेषताओं संबंधी जानकारी की समीक्षा मछलियों पर उपलब्ध साहित्य का प्रयोग करके की गई और इस अध्ययन में क्षेत्रीय निष्कर्षों के साथ इसे जोड़ा गया। काँच की तंग बोतलों के भीतर मछलियों के प्राकृतिक आवास स्थलों से जल नमूनों को एकत्रित किया गया। इफ्कोवाला संतराम इंस्टीट्यूट ऑफ बॉयोटेक्नोलॉजी एवं इमरजिंग साइन्सिज, धर्माज, जिला आनन्द, गुजरात में लवणीयता एवं अन्य भौतिक रासायनिक गुणों हेतु तीन विभिन्न जल नमूनों का विश्लेषण किया गया।

लार्वाभक्षी प्रभावकता हेतु प्रयोगशाला मूल्यांकन

प्रयोगशाला की प्रारंभिक जाँच में, प्राकृतिक आवासों से प्राप्त मछलियों के नमूनों में उनकी आँतों में लार्वे के सिर की उपस्थिति को दर्शाया जो इस ओर संकेत करता है कि मछली में मच्छर लार्वे का शिकार करने की स्वभाविक प्रवृत्ति होती है। *एफानियस डिस्पार* की लार्वा-भक्षण प्रवृत्ति को निर्धारित करने के उद्देश्य से तीन रोगवाहक मच्छर प्रजातियों नामत: *एनॉफिलीज़ स्टीफैंसी, एडीज़ एजिप्टी* एवं *क्युलैक्स क्वैनक्वेफेसिएट्स* के लार्वों का प्रयोगशाला में मूल्यांकन किया गया। 2.2 से 3 से.मी. आकार की वयस्क मछलियों को क्लोरीन रहित नल के पानी वाले काँच के जार में पर्यावरण अनुकूलन हेतु रखा गया। पांच मछलियों को एक लीटर पानी वाले शीशे के जार में छोड़ा गया। सुबह प्रयोगशाला में पोषित 500 लार्वों के समूह को जार में डाला गया और प्रत्येक चार घण्टों में लार्वों की कुल खपत को देखा गया। 24 घण्टों के पश्चात् कुल लार्वे की खपत को रिकॉर्ड करके बचे हुए लार्वों को हटा दिया गया। जार में 500 और लार्वों के नए समूह को डाला गया और इस जाँच को लगातार तीनों दिनों तक दोहराया गया ताकि मछलियों की अधिकतम खाने की क्षमता का पता लगाया जा सके। तीनों प्रजातियों के प्रत्येक 1 से 4 अन्तरूपों हेतु अलग से इन्हे पांच बार दोहराया गया। प्रत्येक लार्वे अंतरूप को एवं प्रजातियों हेतु प्रति मछली की औसतन दैनिक खपत को अलग से रिकॉर्ड किया गया।

लघुस्तर पर क्षेत्रीय मूल्यांकन

नाडियाड से 10 कि.मी. दूर गाँव कंजारी की सीमेंट निर्मित वस्तुओं की उत्पादन इकाइयों में प्रयोग किए जाने वाले पानी से भरे 10 औद्योगिक टैंकों में लघु स्तर पर क्षेत्रीय परीक्षण किए गए। इन टैंकों का आकार 9 से 180 वर्ग मीटर था और इनमें औसतन पानी की गहराई एक मीटर एवं पानी का पी.एच. 7.5 से 9.0 तक था। अधिकांश टैंकों में पानी की सतह पर शैवाल के फूल थे। *एडीज़ एजिप्टी* और *क्युलैक्स क्वैनक्वेफेसिएट्स* कुछ मात्रा में उपस्थित पाए गए और *एनॉफिलीज़ स्टीफैंसी* मुख्य प्रजनन प्रजाति थी। सभी 10 टैंकों में मछली छोड़ने से पूर्व लार्वों की आबादी को रिकॉर्ड किया गया। एक टैंक में 10 वयस्क मछलियों को प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र में छोड़ा गया जबकि अन्य पांच टैंकों को मछलियों के बिना रखा गया। लार्वों की आबादी को मापने हेतु 300 मि.ली. मानक लार्वे डिपर का प्रयोग किया गया। पांच डिप के साथ टैंकों से लार्वों को एनैमल ट्रे में एकत्रित किया गया। मच्छर प्रजाति एवं टैंक द्वारा औसतन लार्वे घनत्व की गणना 0 दिन व तत्पश्चात् 3, 7, 10, 14, एवं 21वें दिन मछलियों को डालने के उपरान्त की गई। प्रयोगात्मक टैंकों में 3 व 4 अंतरूपों में कमी को निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करते हुए मापा गया:—

प्रतिशत कमी $=100-[(सी_1 \times टी_2)/(सी_2 \times टी_1) \times 100]$

उपर्युक्त संदर्भ में $सी_1$ = कंट्रोल टैंकों में मछली डालने से पूर्व लार्वों का घनत्व; $सी_2$ = कंट्रोल टैंकों में मछली डालने के पश्चात् लार्वों का घनत्व; $टी_1$ = मछली टैंकों में लार्वों का घनत्व; एवं $टी_2$ = मछली के टैंकों में मछली छोड़ने के पश्चात् घनत्व।

एफानियस डिस्पार द्वारा लार्वों की तीनों प्रजातियों के लार्वों की औसतन दैनिक खपत में अन्तर के सांख्यिकीय महत्व को स्टुडैंट्स टी-टेस्ट का प्रयोग करते हुए विश्लेषण किया गया है।

निष्कर्षत: पश्चिमी भारत, पूर्वी भूमध्य महासागरीय (पाकिस्तान) ईरान, ईराक, युनाईटिड अरब एमिरेट्स (यू. ए.ई.), सउदी अरब, कुवैत, बहरीन, इज़राईल, ओमान, यमन और पूर्वी अफ्रीकन देशों (दजीबूती) एरितरा, युनान, सूडान, इथोपिया और सोमालिया (चित्र 1) में *एफानियस डिस्पार* का भौगोलिक वितरण किया गया। इसके वितरण के संबंध में प्राप्त अभी तक की जानकारी दर्शाती है कि मछली सामान्यत: तटवर्ती इलाकों में ही पाई जाती है जबकि इज़राईल में प्रजातियों को लाया गया है। गुजरात, भारत के जल निकायों जैसे ज्वार मुहानों के पानी, नालों, अप्रवाही जल एवं कच्छ, जामनगर, पाटन और आनन्द के जिलों में स्थित छोटे बाँधों में हमें बड़ी संख्या में मछलियाँ प्राप्त हुईं। विशिष्ट *एफानियस डिस्पार* नर एवं मादा मछली को चित्र 2 में दर्शाया गया है। *एफानियस डिस्पार* की लार्वा पोषण प्रवृत्ति ने दर्शाया कि मछली द्वारा सभी तीनों मच्छर प्रजातियों को घटती-बढ़ती प्राथमिकता के साथ खा लिया गया है (सारणी-1)। प्रत्येक मछली द्वारा प्रति दिन खाए गए लार्वों की औसतन संख्या का क्रम निम्न प्रकार था:—

एनॉफिलीज़ स्टीफैंसी की औसतन दैनिक खपत 128± 0.2 व 204±6, *एडीज़ एजिप्टी* की 24±4 व 58±10, तथा *क्युलैक्स क्विनक्वेफेसिएट्स* में यह 43±5 व 68±2 के बीच थी। इस तरह तीनों मच्छर प्रजातियों में से *एफानियस दिस्पार* ने *एडीज़ एजिप्टी* या *क्युलैक्स क्विनक्वेफेसिएट्स* की तुलना में *एनॉफिलीज़ स्टीफैंसी*

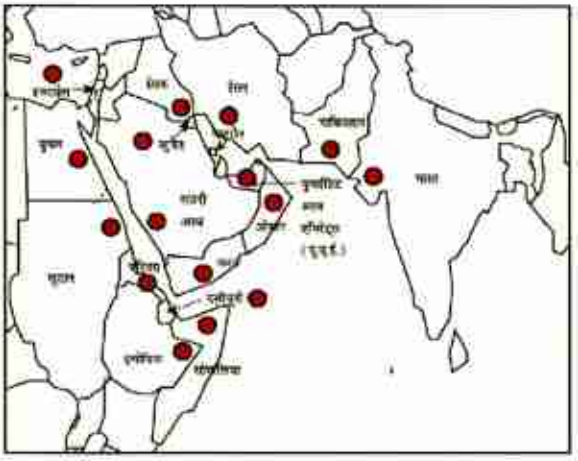

चित्र 1: पूर्वी अफ्रीका, पूर्वी भूमध्य सागरीय देशों में *एफानियस डिस्पार* का वितरण और वर्तमान अध्ययन में भारत के गुजरात राज्य में मछली को इसके प्राकृतिक आवास स्थलों में पाया गया।

चित्र 2: 3.5 से.मी. आकार की वयस्क *एफानियस डिस्पार* नर (ऊपर) एवं मादा (नीचे) मछली। नर मछली के दुमदार फिन पर अर्धचन्द्राकार धारियाँ होती हैं जबकि मादा मछली के शरीर के पार्श्विक हिस्से में ऊर्ध्वाधर गहरी धारियां होती हैं।

के सभी अंतर्रूपों हेतु अपेक्षाकृत अधिक पोषण प्रवृति को दर्शाया। चित्र 3 *एनॉफिलीज़ स्टीफैंसी* के औद्योगिक टैंकों में सर्वाधिक प्रजनन के साथ *एफानियस डिस्पार* की लार्वाभक्षी प्रभावकता को दर्शाता है जबकि मछली टैंकों तथा नियंत्रण टैंकों में 3 व 4 अन्तर्रूपों से पूर्व आबादी में अन्तर महत्वपूर्ण नहीं था। मछली टैंकों में लार्वों की आबादी में नियंत्रण टैंक की तुलना में तीसरे दिन 93% एवं 21वें दिन 98% कमी पाई गई।

सारणी 1. प्रयोगशाला मूल्यांकन में *एफानियस डिस्पार* द्वारा मुख्य मच्छर रोगवाहक प्रजातियों के मच्छर लार्वों का औसतन दैनिक उपभोग

अन्तर्रूप (इंस्टार)	मछलियों का आकार (से.मी.)	उपभोग किए गए लार्वे प्रति दिन ± एस.डी. की औसत संख्या		
		एनॉ. स्टीफैंसी	*एडीज़ एजिप्टी*	*क्युलैक्स क्विनक्वे.*
I	2.4–2.8	188±9[a]	67±2[b]	58±10[c]
II	2.5–3.0	209±6[a]	98±2[b]	53±5[c]
III	2.2–2.7	193±7[a]	52±3[b]	27±3[c]
IV	2.3–2.9	128±0.29[b]	43±5[b]	24±4[c]

उल्लेखित पंक्ति में दिए गए भिन्न (मूर्धांक सुपरस्क्रिप्ट) आँकड़े मुख्यत: भिन्न थे ($P < 0.02$).

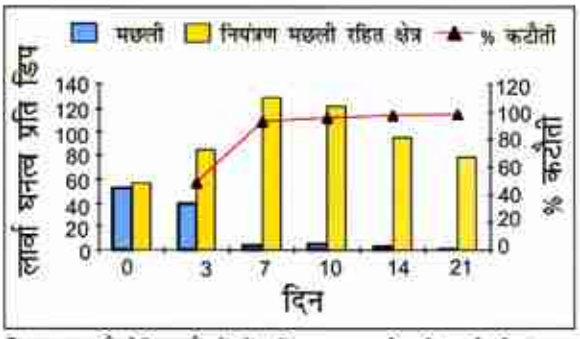

चित्र 3: औद्योगिक टैंकों में प्रति 10 मछली प्रति वर्ग मीटर[2] पर *एफानियस डिस्पार* छोड़ने से विशेष रूप से *एनॉफिलीज़ स्टीफैंसी* के 3 व 4 अंतरूपों में कमी।

विभिन्न कारकों के प्रति मछली की जीव-पारिस्थितिकीय एवं सहयता सीमा संबंधी समेकित जानकारी सारणी-2 में दी गई है जो इस अध्ययन से प्राप्त तथ्यों एवं साहित्य खोज के द्वारा उपलब्ध जानकारी पर आधारित है। मछली के प्राकृतिक आवासों से लिए गए पानी की भौतिक रासायनिक विशेषताएं लवणीयता की (12.3 – 108 पी.पी.टी.) बड़ी श्रृंखला को दर्शाती है। पानी के पी.एच. 7.6 – 7.8, स्वतंत्र CO_2 की अनुपस्थिति एवं बाईकारबोनेट्स की उपस्थिति (213 – 3035 पी.पी.एम.) तथा क्लोराईड्स (4260–9585 पी.पी.एम.) सहित अन्य पेरामीटर शामिल थे।

यद्यपि इस अध्ययन का केंद्र बिन्दु गुजरात के विभिन्न जिलों में भविष्य संदर्भ हेतु *एफानियस डिस्पार* के वितरण

सारणी 2. भारत में *एफानियस डिस्पार* की जीव-पारिस्थितिकी, व्यवहार, सहन सीमा एवं भौगोलिक वितरण

जीव-पारिस्थितिकी	
परिवार	साइप्रिनोडोनटीडे
वयस्क मछली की कुल लम्बाई	5–10 से.मी.
पोना का आकार	मध्यम्
लिंगों की द्विरूपता	मध्यवर्ती नर में दुमदार फिनस पर विशिष्ठ गहरे अर्द्धचन्द्राकार की धारियां; मादा के शरीर पर काली धारियां
अण्डजनन का प्रकार	पौधों एवं अध:स्तर पर अण्डों का जमाव
उद्भवन अवधि	7–10 दिन
निर्जलीकरण के प्रति अंडों की प्रतिरोधकता	अप्रतिरोधी
वृद्धि दर	तीव्र
भोजन	मच्छर लार्वे सहित सर्वाहारी, अतिभक्षक पोषक
मुंह की स्थिति	उच्च (लार्वाभक्षी मछली का विशिष्ट स्वभाव)
व्यवहार	झुंड में रहने की प्रकृति
प्रजनन	सारे वर्ष एक बहुप्रजनक
प्रजनन हेतु उपयुक्त तापमान	16–26 डिग्री सेल्सियस
जल रसायन सहयता	
पानी का पी.एच.	6–9
कठोरता की अवस्था	अति कठोर (12 ग्राम प्रति लीटर खनिज सांद्रण के प्रति सहनशीलता)
लवणीयता	यूरीहेलाईन: खारेपानी के प्रति सहनशील
कार्बनिक प्रदूषण	प्रतिरोधक, कठोर
जल तापमान सहनशीलता	40 डिग्री सेल्सियस तक
आवास स्थल	जलमग्न वनस्पति अथवा तन्तुमय शैवाल से संबंधित, ताजे एवं खारे पानी में अत्यधिक अनुकूलनीय, छिछली, तटवर्ती पानी, तालाबों, समुद्र, तालों, पोखरों, नदियों, छोटे बाँधों, झीलों, नदी मुखों में निवास करती है।
भारत में वितरण	गुजरात राज्य: कच्छ, जामनगर, पातन एवं आनन्द (गल्फ ऑफ कैम्बे) के जिले।

पर आधारित था फिर भी हमने पूर्वी अफ्रीका, पूर्वी भूमध्यसागरीय एवं भारत के तटवर्ती इलाकों में इसके भौगोलिक वितरण संबंधी जानकारी भी समेकित की है। प्रयोगशाला मूल्यांकन में *एफानियस डिस्पार* ने लार्वों हेतु *एनॉफिलीज़ स्टीफैंसी, एडीज़ एजिप्टी* और *क्युलैक्स क्वैनक्वेफेसिएट्स* जैसे भारतीय मच्छर रोगवाहकों के लिए उच्च पोषण प्रवृत्ति को दर्शाया।। व 2 अन्तर्रूपों का संभवत: अपने लघु आकार के कारण 3 व 4 अर्न्तरूपों की अपेक्षा अधिक उपभोग किया गया। यद्यपि मछलियों ने समान रूप से जैव मात्रा ग्रहण की थी किन्तु प्रयुक्त की गई तीनों प्रजातियों में से *एफानियस डिस्पार* द्वारा अन्य दो प्रजातियों की अपेक्षा *एनॉफिलीज़ स्टीफैंसी*का उपभोग अधिक किया गया। इसके साथ ही *क्युलैक्स क्वैनक्वेफेसिएट्स*की अपेक्षा *एडीज़ एजिप्टी* का उपभोग अधिक किया गया।

एडीज़ एवं *क्युलैक्स* लार्वों का कम उपभोग न केवल उनके बड़े आकार के कारण अपितु अधिक पोषण के कारण भी पाया गया । पूर्व अध्ययन में, यह रिपोर्ट मिली थी कि प्रयोगशाला की स्थितियों में *एफानियस डिस्पार* 3 व 4 अन्तर्रूपों एवं प्यूपों का शिकार करने में *गम्बुशिया एफिनिस* की अपेक्षा अधिक सफल रही और ये दोनों प्रजातियाँ विभिन्न आवासीय स्थितियों में मच्छर नियंत्रण कारकों के रूप में एक दूसरे की पूरक बन सकती थीं। क्षेत्रीय परीक्षण के परिणामों ने दर्शाया कि *एफानियस डिस्पार* सीमित जल निकायों में इसके अनुप्रयोग के दो सप्ताह के भीतर प्रभावशाली ढंग से मच्छर प्रजनन को नियंत्रित करने में सक्षम है।

इस अध्ययन में हमने यह भी पाया कि मछलियाँ लवणीयता की विविध सीमाओं वाले पानी में पाई जाती हैं। यूरीहेलाईन नामक मछली होने के कारण (जो खारेपन की व्यापक सीमा सहन कर सकती है) का प्रयोग खारे एवं ताजे पानी वाले स्थलों में किया जा सकता है। इन मछलियों को उनके प्राकृतिक आवास स्थलों से एकत्र कर उन्हें ताजे पानी के टैंकों में संचित करने के हमारे अनुभव ने इस विश्वास को और अधिक पुष्ट किया है कि मछलियों का प्रयोग रोगवाहक नियंत्रण के उद्देश्य से तटवर्ती इलाकों के परे ताजे पानी में भी किया जा सकता है। पूर्व अध्ययन भी यह दर्शाते हैं कि *एफानियस डिस्पार* को ताजे पानी से लेकर समुद्री जल जैसे विविध रूपों में पाया जाता है और यह ताजे पानी से समुद्री जल तक खारेपन में आने वाले परिवर्तन होने पर अपने शरीर को परासरणी (ओसमोटिक) दबाव एवं आयनिक सान्द्रण के कारण कायम रखती है। इसकी जीव-पारिस्थितिकी, पी.एच. और खारेपन के प्रति इसकी सहयता सीमा एवं उष्णकटिबंधीय पानी में इसकी बहु-प्रजनन क्षमता इसे भारतीय परिस्थितियों में विशेष रूप से गुजरात राज्य में एक सशक्त लार्वाभक्षी मछली बनाती है। यह सामूहिक रूप से प्रचुर मात्रा में तटवर्ती पानी में पाई जाती है। अन्यत्र, भी इस प्रजाति को तापमान, खारेपन एवं फोटोपीरियड के प्रति सहनशील पाया गया। एक अन्य अध्ययन से 40 पी.पी.टी. खारेपन पर *एफानियस डिस्पार* की वृद्धि में कमी की रिपोर्ट प्राप्त हुई, जिसमें 8-56 पी.पी.टी. के अन्तिम सिरों में वृद्धि पाई गई। वयस्क *एफानियस डिस्पार* की पोषण दरों में शरीर के वज़न 0 से 4% प्रति दिन अथवा तापमान में 18 से 23 डिग्री सेल्सियस बढ़ने पर वृद्धि हुई।

मलेरिया व डेंगू गुजरात में मुख्य रोगवाहक जन्य रोग हैं। सूखा-प्रभावित क्षेत्रों में सरकार के मुख्य विकास कार्यक्रम के द्वारा हजारों रोक बाँध, फार्म तालाब एवं अन्य वर्षा के पानी की फसल-पद्धतियों का निर्माण किया गया है, जबकि सरदार सरोवर जल संसाधन विकास परियोजना से गुजरात के अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में निकट भविष्य में बड़े क्षेत्र को सिंचित करने की संभावना है। शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में मच्छरों की आबादी वर्ष के दौरान सूखे भाग के कारण जलीय आवास स्थलों की सीमित संख्या की उपलब्धता पर निर्भर होती है। इस तरह, ऐसे सीमित पानी में लार्वा आवास स्थलों का प्रबंधन एवं *एफानियस डिस्पार* का प्रयोग ऐसे क्षेत्रों में रोगवाहक जन्य रोगों के बढ़ते हुए खतरे को कम करने का स्थानीय समाधान प्रदान करता है। मछली के प्रयोग से कीटनाशकों पर हमारी निर्भरता में कमी आएगी तथा इसे एक सस्ता, पर्यावरणीय सुरक्षित एवं लक्ष्य-विशिष्ट रोगवाहक नियंत्रण उपाय के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है

मलेरिया संबंधी देश-विदेश के समाचार

शुक्राणु रहित मच्छर

मादा मच्छर जीवन काल में एक ही बार संबंध बनाती है और शुक्राणु जमा करके जीवन भर अंडे निषेचित करती है। वैज्ञानिकों ने मलेरिया रोकने की कोशिश में शुक्राणु रहित मच्छर विकसित किए हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि मच्छरों की संख्या कम करने की दिशा में यह पहला महत्वपूर्ण कदम है। मलेरिया की वजह से दुनिया भर में प्रति वर्ष 10 लाख लोग मारे जाते हैं और अफ्रीका में तो बच्चों की कुल मौतों में से 20 प्रतिशत सिर्फ मलेरिया से ही होती हैं। वैज्ञानिकों के इस प्रयास की चर्चा नेशनल एकेदमी ऑफ साइंसेज में है। वैसे तो कीटों का वंध्याकरण नई बात नहीं है और इससे पहले सीसी मक्खी के वंध्याकरण में विकिरण का सहारा लिया गया था। मगर अब वैज्ञानिकों ने महीनों की मेहनत के बाद विकिरण की जगह मच्छर को शुक्राणु रहित करने का नया तरीका ढूंढ निकाला है। लंदन के इंपीरियल कॉलेज की फ्लोमिनिया कैटेरुचिया ने अपने छात्र जैनिस थैलायिल की मदद ली जिससे नर मच्छरों के शुक्राणु तो खत्म किए जा सकें मगर वह फिर भी स्वस्थ रहें।

थैलायिल ने 10 हजार मच्छरों के भ्रूण में आर.एन.ए. का एक ऐसा छोटा हिस्सा डाला जिससे उनमें शुक्राणु का विकास करने वाला जीन खत्म हो गया। इतनी मेहनत के बाद शोधकर्त्ता 100 शुक्राणु विहीन मच्छरों के विकास में कामयाब हो गए और ये भी पता चला कि मादा मच्छर को ऐसे मच्छरों और आम मच्छरों में अंतर पता नहीं लगा। दरअसल मादा मच्छर जीवन काल में एक ही बार संबंध बनाती है और शुक्राणु जमा करके जीवन भर अंडे निषेचित करती है तो अगर वैज्ञानिक उन्हें ये धोखा देने में कामयाब हो जाते हैं कि उन्होंने नर मच्छर से सफलतापूर्वक संबंध बना लिया है तो वे बिना ये जाने ही अंडे देना जारी रखेंगी कि उन अंडों का निषेचन यानी फर्टिलाइजेशन तो हुआ ही नहीं है। कई पीढ़ियों के बाद धीरे-धीरे आम मच्छर की संख्या गिरती जाएगी और उम्मीद है कि इससे मलेरिया को कम करने में मदद मिल सकती है।

महामेधा नई दिल्ली
दिनांक **15 फरवरी 2012** से उद्धृत

कालाज़ार से होगा छुटकारा संभव

मलेरिया के बाद विश्व के दूसरे सबसे खतरनाक परजीवी बुखार कालाज़ार से हमेशा के लिए छुटकारा पाना अब संभव हो सकता है। हाल ही में भारत व अमेरिका के सहयोग से कालाज़ार की रोकथाम के लिए टीका तैयार किया गया है जो परीक्षण के पहले चरण तक पहुंच चुका है।

पिछले दो दशकों से इस टीके पर कार्य चल रहा था। इस बारे में भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (आई.सी.एम.आर.) के पूर्व प्रोफेसर एन.के. गांगुली के अनुसार, यह टीका कालाज़ार के उपचार के लिए अब तक की सभी दवाओं से उत्कृष्ट होगा क्योंकि इससे न सिर्फ इस बीमारी से छुटकारा मिलेगा बल्कि इसके होने की सभी आशंकाएं भी समाप्त हो जाएंगी। गौरतलब है कि भारत समेत नेपाल, बंग्लादेश, सुडान व ब्राजील में करीब पांच लाख से अधिक लोग प्रतिवर्ष कालाज़ार की चपेट में आते हैं। वर्ष 2010 की एक रिपोर्ट के अनुसार इस साल देश में इस रोग से करीब 73 लोगों की मृत्यु हो चुकी है।

इन्फेक्शियस डिसीज़ रिसर्च इंस्टिट्यूट (आई.डी.आर.ई.) के संस्थापक व वेक्सीन डेवलपर स्टीव रीड ने बताया कि इन टीकों के पहले चरण का परीक्षण अमेरिका में शुरू हो गया है और जल्द ही हमारे देश में शुरू किया जाएगा।

नई दुनिया राष्ट्रीय राजधानी संस्करण, नई दिल्ली
दिनांक **24 फरवरी 2012** से उद्धृत

खोजा मलेरिया का टीका

ब्रिटेन के वैज्ञानिकों को मलेरिया का प्रयोगात्मक टीका विकसित करने में सफलता मिल गयी है। यह टीका मलेरिया परजीवी की लगभग सभी जानलेवा प्रजातियों के खिलाफ प्रभावशाली साबित हो सकता है। ब्रिटिश वैज्ञानिकों का यह सफल शोध *नेचर कम्युनिकेशन* पत्रिका में छपा है। शोधकर्त्ता टीम के सदस्य एड्रियन हिल ने बताया कि मलेरिया के खिलाफ प्रभावी टीका तैयार करना एक बेहद मुश्किल काम है। टीके का शुरूआती परीक्षण चूहों और खरगोशों पर किया गया है जो काफी सफल रहा।

मलेरिया परजीवी की सबसे घातक प्रजाति *फाल्सीपेरम* से पीड़ित इन जानवरों को जब टीका लगाया गया तो टीके ने उनके शरीर में इस परजीवी के खिलाफ एंटीबाडी के बनने को प्रेरित किया। मलेरिया की इस प्रजाति के कारण प्रतिवर्ष संसार भर में लगभग छह लाख 55 हजार लोगों की मौत हो जाती है। शोधकर्त्ताओं ने बताया कि अगले दो से तीन साल में इंसानों पर भी इस टीके का इस्तेमाल शुरू करने की उनकी योजना है लेकिन इंसानों के लिए पूर्ण रूप से इस टीके के विकास में अभी एक दशक या उससे भी अधिक का समय लग सकता है।

मलेरिया परजीवी के खिलाफ टीका विकसित कर रही इस टीम के पिछले शोध में शोधकर्त्ताओं ने आर.एच.-5 नाम की एक प्रोटीन की पहचान की थी। यही वह प्रोटीन है, जो मलेरिया परजीवी की लाल रक्त कोशिकाओं आर.बी.सी. में पहुंच आसान बनाती है जहां पहुंचकर यह परजीवी तेजी से विकसित होता है। इसी दौरान शोधकर्त्ताओं ने उम्मीद जताई थी कि इस प्रक्रिया पर रोक लगाकर बीमारी को बीच में ही रोका जा सकता है। नए शोध के बाद शोधकर्त्ता काफी उत्साहित हैं। उनका कहना है कि आर.एच.-5 के बारे में रोमांचक यह है कि नए शोध ने साबित कर दिया है कि इस प्रोटीन के खिलाफ एंटीबाडीज निर्माण को प्रेरित किया जा सकता है और ऐसा हर उस परजीवी के खिलाफ किया जा सकता है जिसको परीक्षणों के बाद लगाया गया हो। शोध में शामिल ऑक्सफोर्ड के जेनर संस्थान के वैज्ञानिक सिमोन ड्रेपर ने कहा किहालांकि हमें अभी तक यह नहीं पता चला है कि यह टीका मलेरिया को रोक पाने में पूरी तरह सक्षम है कि नहीं।

मलेरिया के परजीवी का जीवन-चक्र इंसान के खून में शुरू होता है जब यह परजीवी लाल रक्त कणों में प्रवेश करता है तो इसी अवस्था में इंसान मलेरिया से ग्रस्त हो जाता है और बड़ी संख्या में लोगों की मौत का कारण बनता है। मलेरिया के कारण अफ्रीका के उप-सहारा क्षेत्र में बड़ी संख्या में बच्चों और शिशुओं की मौत होती है।

दैनिक भास्कर नोएडा
दिनांक **22 दिसम्बर 2011** से उद्धृत

मच्छरों का सफाया करेगी मकड़ी

विश्व में मलेरिया के कारण हर साल हजारों लोग अपनी जान गंवा देते हैं। इसके पीछे मलेरिया परजीवी की वाहक मादा मच्छर *एनॉफिलीज़* है। विश्व स्तर पर इस मच्छर को मारने के लिए चलाए जा रहे अभियानों में एक जैविक नियंत्रण अभियान आ जुड़ा है। न्यूज़ीलैंड की यूनिवर्सिटी ऑफ केंटरबरी के शोधकर्त्ताओं ने पूर्वी अफ्रीका के क्षेत्र में पाई जाने वाली एक जंपिंग यानी कूदने वाली मकड़ी की तलाश की है, जो मच्छरों की तरह मानव गंध से आकर्षित होती है और मच्छरों पर धावा बोल उन्हें मार देती है। शोधकर्त्ता डॉ. कफओना क्रॉस और उनके सहयोगियों ने गंध आधारित 'आलफेक्टोमीटर' उपकरण बनाया जो एक विशेष गंध भेज मच्छरों को आकर्षित करता है। इस उपकरण में मकड़ियां होती हैं, जो मच्छरों पर धावा बोल उन्हें मार डालती हैं। शोधकर्त्ताओं का दावा है कि उनका यह उपकरण अभी प्रयोगिक स्तर पर है और जल्द ही व्यावसायिक स्तर पर बाजार में उतारा जाएगा, जो मलेरिया पर काबू पाने में मददगार होगा।

हिन्दुस्तान नई दिल्ली
दिनांक **2 जनवरी 2012** से उद्धृत

समाचारपत्रों के पंजीकरण (केन्द्रीय) नियम 1965 के नियम 8 के अन्तर्गत अपेक्षित 'मलेरिया पत्रिका' के स्वामित्व तथा अन्य मुद्दों से संबंधित विवरण

फार्म IV

नियम 8 देखें

प्रकाशन का स्थान	:	राष्ट्रीय मलेरिया अनुसंधान संस्थान (भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्) सैक्टर-8, द्वारका, नई दिल्ली-110 077
प्रकाशन की अवधि	:	त्रैमासिक (मार्च, जून, सितम्बर व दिसम्बर)
मुद्रक का नाम	:	डॉ. नीना वलेचा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	राष्ट्रीय मलेरिया अनुसंधान संस्थान (भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्) सैक्टर-8, द्वारका, नई दिल्ली-110 077
प्रकाशक का नाम	:	डॉ. नीना वलेचा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	उपर्युक्त
सम्पादक का नाम	:	डॉ. नीना वलेचा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	उपर्युक्त
समाचार पत्र के स्वामी और कुल पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के अंशधारियों/साझेदारों के नाम व पते	:	राष्ट्रीय मलेरिया अनुसंधान संस्थान (भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्) सैक्टर 8, द्वारका, नई दिल्ली-110 077

मैं, डॉ. नीना वलेचा, यह घोषणा करती हूँ कि ऊपर दिए गए तथ्य मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

30 मार्च 2012

ह./-
नीना वलेचा
(प्रकाशक)

पंजीयन संख्या 57151/93

निःशुल्क

एकत्रित पानी, मच्छर और मनुष्य; साधन हैं मलेरिया के,
शीघ्र निदान, तुरन्त उपचार, साध्य हैं मलेरिया के।
बुखार, कंपकपी और मतली लक्षण हैं मलेरिया के,
सचेतना, सावधानी और सतर्कता, बचाव हैं मलेरिया के॥

सेवा में,

प्रेषक;
राष्ट्रीय मलेरिया अनुसंधान संस्थान
सैक्टर 8, द्वारका
नई दिल्ली-110 077

राष्ट्रीय मलेरिया अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली की ओर से डॉ. नीना वलेचा द्वारा प्रकाशित तथा मैसर्स रॉयल ऑफसैट प्रिंटर्स, ए-89/1, नारायणा औद्योगिक क्षेत्र, फेस-1, नई दिल्ली-110 028 से मुद्रण कर राष्ट्रीय मलेरिया अनुसंधान संस्थान, सैक्टर-8, द्वारका, नई दिल्ली-110 077 से प्रकाशित।
सम्पादक: डॉ. नीना वलेचा